P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-6* ISSUE-6* February (Part2) * 2019
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

श्रीमद्भागवत पुराण में वर्णित दार्शनिक परिप्रेक्ष्य

हेमलता सैनी
शोधार्थी,
संस्कृत विभाग,
मोहनलाल सुखाड़िया
विश्वविद्यालय, उदयपुर,
राजस्थान, भारत

सारांश

बह्माण्ड की उत्पति, स्थिति, प्रलय तथा पुनः सृष्टि यही संसार चक्र है जिसमें पृथ्वी और प्राणी निरन्तर चक्कर काटते रहते है इसी के अन्तर्गत हम श्रीमद् भागवत में निहित दार्शनिक ज्ञान का हम अध्ययन करेंगें ।

श्रीमद्भागवत पुराण संस्कृत वाङ्मय का मुकुट मणि है जिसके श्रवण–मनन–चिन्तन एवं पाठ से चित्त में अलौकिक सुख व शान्ति प्राप्त होती है यह अत्यन्त गोपनीय व रहस्यमय पुराण है। जिसे भगवान के रूपो का अनुभव कराने वाला समस्त वेदो का दार्शनिक सार कहा गया है। एक और भगवान का नियमित नाम स्मरण सुख शान्ति व समृद्धि प्रदान करता है, वही दूसरी और हमें सांसारिक जनों को जीवन–जीने की कला भी सीखाता है।

मुख्य शब्द : श्रीमद्भागवत, दर्शन, दार्शनिक ज्ञान।

प्रस्तावना

श्रीमद्भागवत में दार्शनिक ज्ञान के अन्तर्गत सकाम कर्म, निष्काम कर्म, ज्ञान साधना, सिद्धि साधना, भक्ति अनुग्रह, मर्यादा, द्वैत–अद्वैत, द्वैताद्वेत, निर्गुण–सगुण, ताप–त्रय, व्यक्ताव्यक्त रहस्यों का समन्वय उपलब्ध होता है इसके अतिरिक्त ज्ञान–भक्ति व वैराग्य का प्रतिपादक अष्टांग योग, ज्ञान कर्म भक्ति योग के साथ सृष्टि क्रम का निरूपण करते हुए प्रकृति पुरूष विवेक से मोक्षपद प्राप्ति का विवेचन करता है इसके अन्तर्गत दर्शन व धर्म का घनिष्ठ सम्बन्ध है दर्शन सिद्धान्तों का प्रतिपादक और नियामक रूपेण है तो धर्म व्यवहार–मार्ग दर्शक है। भारतीय दर्शन आध्यात्मिकता से ओत प्रोत है। 1 अतः दार्शनिकता, व्यापक एवं विशाल धर्मिता के कारण सर्वश्रेष्ठ स्थान को प्राप्त है।

दर्शन का स्वरूप

दर्शन जागतिक सत्य और जीवन के सार का अन्वेषण है। इसलिए जीवन का सृष्टि विषयक समस्त चिन्तन दर्शन कहा जा सकता है। दर्शन शब्द का व्युत्पत्ति जन्य अर्थ है– देखना, विचारना, श्रद्धा करना। आदि काल से ही मानव ने अपने जीवन में दर्शन को प्रमुख स्थान दिया था दर्शन शब्द का वाच्यार्थ है– जिसके द्वारा देखा जाये (दृश्यते अनेनेति दर्शनम्) किसी भी वस्तु के तात्विक स्वरूप को जानने का साधन दर्शन है। दर्शन शब्द दृशिर प्रेक्षणे धातु से ल्युट प्रत्यय 2 करने पर निष्पन्न होता है।

दर्शन के अन्तर्गत ही मनुष्य में अपने आस–पास के पदार्थो को समझने के लिए जिज्ञासा की लहरे सदा दौडा करती है। यही नही उसके साथ इन वस्तुओं का क्या सम्बन्ध है उस सम्बन्ध का निरूपण कौन करता है इत्यादि कितनी ऐसी शंकाये है जिनसे मनुष्य को चिन्तन की प्रेरणा मिलती रहती है।

मनुस्मृतिकार के अनुसार–
'सम्यक दर्शन सम्पन्नः कर्मभिर्निर्बद्धयते। 3
दर्शनेन विहिनस्तु संसार प्रतिपद्यते।।'

अतः दर्शन शब्द तत्व ज्ञान, आत्म ज्ञान अथवा परमात्मा ज्ञान का वाचक है। भागवत पुराण में विवेचित दार्शनिक तत्वों ब्रह्म जीव व माया आदि का निरूपण इस प्रकार से भी किया जा सकता है–

ब्रह्म स्वरूप विवेचन

भारतीय दार्शनिक सम्प्रदायों को आस्तिक सम्प्रदाय एवं नास्तिक सम्प्रदाय रूपेण द्विविध माना गया है। वेदो को प्रमाणिक रूप से स्वीकार करने वाला आस्तिक तथा वेदो को न स्वीकार करने वाला नास्तिक दर्शन माना जाता है। कहा भी गया है कि नास्तिको वेदनिन्दक श्रीमद्भागवत पुराण किसी विशिष्ट दार्शनिक सम्प्रदाय का न तो अनुयायी है और न ही यह दर्शन का शास्त्रीय ग्रन्थ है। इसमें तत्कालीन प्रचलित दार्शनिक विचार धाराओं का सुसमन्वित स्वरूप प्रस्तुत किया गया है जिसमें प्रत्येक जनसाधारण के उपास्य व आराध्य का स्वरूप समाविष्ट होता है। भागवत पुराण का प्रथम श्लोक ही उस परम तत्व का स्वरूप है।

जन्माद्यस्य यतोडन्वयादितरतश्चार्थेष्वभिजः स्वराट्
तेने ब्रह्म हृदाय आदि कवये मुह्यन्ति यत्सूरयः ।
तेजोवारिमृदां यथ विनिमयों यत्र त्रिसर्गोऽमृषा
धाम्ना स्वेन सदा निरस्तकुहकं सत्यं परं धीमहि ।। [4]

जिसमें इस जगत की सृष्टि, स्थिति और प्रलय होते है वही समस्त सद्रूप पदार्थो में अनुगत है और असत, पदार्थो से पृथक है वह जड़ नही चेतन है, परतन्त्र न होकर स्वतन्त्र से वह स्वंय प्रकाश है जो ब्रह्म अथवा हिरण्यगर्भ को भी अपने संकल्प से ज्ञान प्रदान करने वाला है जिस कारण यह त्रिगुणमय जाग्रत–स्वप्न–सुषुप्ति रूपा सृष्टि मिथ्या होने पर भी अधिष्ठान सत्ता से सत्यवत प्रतीत हो रही है उन स्वंय प्रकाश ज्योति से सर्वदा माया कार्य से पूर्णतः मुक्त रहने वाले परम सत्यस्वरूप परमात्मा का हम ध्यान करते है। इस परमात्मा को ही बहुधा बह्म परमात्मा और भगवान कहते है यथा –

स एव विश्वं सृंजति स एवावति हन्ति च।
अधापि ह्यनहंकाराभाज्यते गुणकर्मभिः।। [5]

सांख्य दर्शन में वर्णित पुरूषवत, श्रीमद्भागवत पुराण का ब्रह्मतत्व केवल साक्षीमात्र नही है अपितु उसको जगत सृष्टा धारियता तथा संहारक भी कहा गया है। अतः वही जगत का निमित्त व उपादान कारण है।

माया स्वरूप विवेचन

जागतिक सृष्टि के पश्चात सत स्वरूप अपने द्वारा रचित संसार में ही अनुप्रविष्ट हो जाता है उसके अधिष्ठान से यह जगत भी सत्यवत् स्वरूप को प्राप्त होता है जिस प्रकार सोया हुआ पुरूष स्वप्नावस्था को अविद्या के कारण मन ही मन स्वप्न जगत की सृष्टि करके उसमें स्वंय उपस्थित होकर विविध रूपों में अनेकविध कर्म करता हुआ सा प्रतीत होता है। 6 जबकि वास्तविक रूपेण व्यक्त–अव्यक्त रूप प्रकृति एवं जीवो से परे पुरूषोत्तम स्वरूप है। यथा–

त्वं मायायाऽऽत्माश्रयया स्वयेदं निर्माय विश्वं तदनुप्रविष्टः
पश्यन्ति युक्ता मनसा मनीषिणों गुणव्यवायेंऽप्यगुणं
विपश्चित।।[7]

पुनरपि अपने आश्रय में स्थित माया से इस संसार की रचना करते है तथा इसमें पुनः प्रविष्ट होकर अन्तर्यामी रूपेण विराजमान होते है। इसलिए विवेकी और शास्त्रज्ञ एकाग्रचित्त होकर आपके निर्गुण स्वरूप का ही साक्षात्कार करते है।

हे परमात्मन पहले भी यह जगत आप में ही लीन था मध्य में भी यह आपमें ही स्थित है और अन्त में भी पुनः आप में ही लीन हो जाएगा। आप ही इस जगत के आदि मध्य और अन्त है जिस प्रकार घड़ें का आदि, मध्य और अन्त मिट्टी ही है वही अपने प्रभाव से माया मोहित जीवों के लिए धर्मादिरूप कल्याण का विधान करते है उक्तमपि–

त्वमाद्यः पुरूष साक्षादीश्वरः प्रकृतेः परः।
मायां व्युदस्य चिच्छक्त्या कैवल्ये स्थित आत्मनि।। [8]

शरीर धारियों को मुक्ति का अनुभव कराने वाली आत्म विद्या और बन्धन का अनुभव कराने वाली अविद्या दोनों ब्रह्म की ही अनादि शक्तियां है। उसकी माया से ही इनकी रचना हुई है। [9]

जीव का स्वरूप विवेचन

जीव और ईश्वर बद्ध और मुक्त के भेद से भिन्न–भिन्न होने पर भी एक ही शरीर में नियन्ता और नियन्त्रित रूप से स्थित है। जैसे शरीर एक वृक्ष है जिसमें हृदय का घौसला बनाकर जीव और ईश्वर नामक दो पक्षी रहते है। वे दोनो चेतन होने से समान व कभी न बिछुड़ने के कारण सखा है। इनके निवास का कारण लीला–मात्र ही है। इतनी समानता होने पर भी जीव तो शरीर रूपी वृक्ष के फल सुख–दुःख आदि भोगता है परन्तु ईश्वर उन्हे न भोगकर कर्मफल सुखः दुखादि से असंग और उनका साक्षी मात्र रहता है। अभोक्ता होने पर भी वह ज्ञान, ऐश्वर्य आनन्द और सामर्थ्य आदि में भोक्ता जीव से बढकर है। यथा–

सुपर्णावेतौ सदृंशौ सखायौ यदृच्छयैतौ कृतनीडोच वृक्षें।
एकस्तयोः खादतिपिप्पलान्न मन्ययोनिरन्नोऽपिबलेन
भूयान।।
आत्मान मन्यं च स वेद विद्वाण पिप्पलादो न तुपिप्पलादः।
योऽविद्ययायुक स तु नित्यबद्वोविद्यामयोयःसतुनित्यमुक्तः।।[10]

अभोक्ता ईश्वर तो अपने वास्तविक स्वरूप एवं जगत को भलीभाति जानता है परन्तु भोक्ता जीव अपने वास्तविक रूप व जगत को नही जानता। इस कारण जीव को सुषुप्ति अवस्था में बताया गया है जो कि अपनी शक्ति से स्वंय माया को जाग्रत करता है।

भागवत् पुराण में कृष्ण को स्वयं भगवान माना गया है–

एते चाशकलाः पुसः कृष्णस्तु भगवान स्वयम्।
इन्द्रारि व्याकुंल लोंक मूडयन्ति युगे युगे।। [11]

जब लोग दैत्यो के अत्याचारो से व्याकुल हो उठते है, तब–तब युग–युग में अनेक रूप धारण करके भगवान उनकी रक्षा करते है। भगवान ने सृष्टि के प्रारम्भ में लोको के निर्माण की कामना से महदादि तत्वों से निष्पन्न पुरूष रूप ग्रहण किया। उक्तमति–

एतन्नानावताराणां निधांन बीजमव्ययम्।
यस्यांशांशेन सृज्यन्ते देवतिर्यङ्नरादयः।। [12]

जिस पुरूष रूप का ग्रहण भगवान ने किया उसमें दस इन्द्रिया एक मन और पाँच भूत–ये सोलह कलाएँ थी। भगवान के उस विराट् स्वरूप के अड्ग प्रत्यड्ग में ही समस्त लोको की कल्पना की गई है जो कि उनका विशुद्ध सत्वमय् श्रेष्ठ स्वरूप है। भगवान का यही पुरूष रूप जिसे नारायण कहते है अनेक अवतारों का अक्षय कोष है। इसी से समस्त अवतार प्रकट होते है तथा इसके सूक्ष्मतम अंश से देवता पशु–पक्षी और मनुष्यादि योनियों की सृष्टि होती है।

योगी लोग दिव्य दृष्टि से ही भगवान के उस रूप का दर्शन करते है। यथा–

स वा अयं यत्पदमन्नं सूरयो
जितेन्द्रिया निर्जित मातरिश्वनः।
पश्यन्ति भक्त्युत्कलिता मलात्मना
नन्वेष सत्वं परिमार्ष्टुमर्हति।। [13]

अर्थात इस जगत में जिसके स्वरूप का साक्षात्कार जितेन्द्रिय योगी अपने प्राणों को वश में करके भक्ति से प्रफुल्लित निर्मल हृदय में किया करते है, ये श्रीकृष्ण वही साक्षात परब्रह्म है। वास्तव में इन्ही की भक्ति

से अन्तः करण की पूर्ण शुद्धि हो सकती है, योगादि के द्वारा नही । अतः जिनकी सुन्दर लीलाओं का गायन वेदो में और दूसरे गोपनीय शास्त्रों में व्यासादि रहस्यवादी ऋषियों ने किया है–जो एक अद्वितीय ईश्वर है और अपनी लीला से जगत की सृष्टि पालन तथा संहार करते है, परन्तु उनमें आसक्त नही होते।

'जायते, अस्ति, वर्धते, परिणमते, अपक्षीयते और विनश्यति' ये छः भाव विकार भी निवृत होने पर केवल ईश्वर ही शेष रहता है।

उद्देश्य

श्रीमद्भागवत् का जो लोग इतनी श्रद्धा से पाठ करवाते है या यु कहे की भागवत सप्ताह का जो आयोजन करवाते है उससे उनको किस प्रकार से इस संसार के अज्ञान से मुक्ति मिल सकती है क्योकि वर्तमान परिप्रेक्ष्य में इससे सरल कोई मुक्ति का उपाय वर्णित नही है क्योकि इस भागवत कथा का गुणगान श्रीहरि के मुख द्वारा ही किया गया था तो उससे अच्छा उपाय हो भी क्या सकता है।

अतः दार्शनिक तत्वो को जब हम बतलायेंगे तभी लोगो के मन में जो नास्तिकता भरी हुई है उन नास्तिक भावो को आस्तिक भावो में बदलने के लिए ये परम उपादेय ग्रन्थ है इसलिए इसी के दार्शनिक तत्वो का विवेचन किया जा रहा है ताकि लोगो में दार्शनिक सोच जो लुप्त प्रायः हो गयी है उसको पुनः जाग्रत करके उनके मन में इसी भावना को पुनः समावेशित किया जा सके।

निष्कर्ष

अन्ततोगत्वा श्रीमद्भागवत् पुराण में बह्म को एक ज्ञानस्वरूप और निर्गुण बतलाया गया है, जिस प्रकार एक ही परब्रह्म महत् तत्व त्रिविध अहंकार, पच्चमहाभूत और एकादश इन्द्रिय रूप बनकर इनके संयोग से जीव कहलाता है, उसी प्रकार जीव का शरीर रूप यह ब्रह्माण्ड भी वस्तुतः ब्रह्म है। यथोक्तम–

'ज्ञानमेकं पराचीनैरिन्द्रियैर्ब्रह्म निर्गुणम्।
अवभात्यर्थ रूपेण भ्रान्त्या शब्दादि धर्मिणा।।
यथा महानह रूप स्त्रिवृत्यपच्चविधः स्वराट।
एकादशविधस्तस्य वपुरण्ड जगद्यतः।। [14]

अतः श्रीमद्भागवत महापुराण में ब्रह्म को निरवयत, निराकार, अरूप, चिदात्मक, त्रिगुणी, माया से संसार की रचंना करने वाला बतालाया गया है।

अंत टिप्पणी

1. *धर्म और दर्शन– पं. बलदेव उपाध्याय पृ. 309*
2. *संस्कृत हिन्द कोष–वामन शिवराम आप्टे, पृ. 450*
3. *मनुस्मृति– 6.74*
4. *श्री.भा.पु.– 1.1.1*
5. *श्री.भा.पु 4.11.25*
6. *श्री.भा.पु 10. 86. 45*
7. *श्री.भा.पु 8. 6.11*
8. *श्री.भा.पु 1.7. 23*
9. *श्री.भा.पु 11.11.9*
10. *श्री.भा.पु 11.11.6–7*
11. *श्री.भा.पु 1. 3. 28*
12. *श्री.भा.पु 1. 3. 5*
13. *श्री.भा.पु 1.10. 23*
14. *श्री.भा.पु 3. 32. 28–29*